**ओ३म्**

**“आधुनिक काल में वेद एवं इतर मत-पन्थ ग्रन्थों की प्रासंगिकता”**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

महाभारत काल के बाद संसार में अनेक ज्ञानी व अल्पज्ञानी पुरुष हुए जिन्होंने देश, काल व परिस्थिति के अनुसार, साथ ही अपनी योग्यतानुसार, कुछ मतों का प्रचलन भी किया है। समय के साथ यह पल्लवित व पोषित होते रहे और आज कुछ मतों का संसार पर अत्यधिक प्रभाव व प्राधान्य है। महाभारतकाल के बाद का काल मध्य काल कहा जाता है और वर्तमान काल को आधुनिक काल कह सकते हैं। महाभारत काल से पूर्व काल को वैदिक काल या प्राचीन काल भी कह सकते हैं। महाभारत काल व उससे भी कहीं अधिक प्राचीन चार वेद हैं जिनसे कुछ कम ही सही, संसार के बुद्धिजीवी उसकी विषय वस्तु से भले ही परिचित न हो परन्तु वेदों के नाम से तो परिचित हीं हैं। ऐसा ऋषि दयानन्द द्वारा आलम में वेदों का डंका बजा देने के कारण से भी है। तर्क व विवेक से यह ज्ञात होता है कि महाभारत काल से पहले ऐसा काल रहा है कि जब सारे विश्व में वेदों का प्रचार था और वेद तथा वेदानुकाल शिक्षाओं को ही धर्म मानकर उसका सभी पालन करते थे। महाभारत युद्ध के बाद वेदों का पठन-पाठन कम हुआ और विश्व की जनसंख्या तेजी से वृद्धि को प्राप्त हुई। लोग इधर उधर आने जाने लगे। भारत भी एक साम्राज्य न रहकर छोटे छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। असंगठित देश व शक्ति का जो परिणाम होता है, वह कालान्तर में भारत में देखने को मिला। वेद की शिक्षाओं का स्थान भारत में अज्ञान व अविद्या के कपोल कल्पित ग्रन्थ 18 पुराणों ने ले लिया। इन पुराण की शिक्षाओं से वैदिक धर्म का पतन हुआ। जिस परिवार व समाज की शासन व अनुशासन व्यवस्था खराब हो वहां शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था नहीं रहती, ऐसा ही कुछ हमारे देश में व्यापक रूप से हुआ।

कालान्तर में लोगों के आलस्य व प्रमाद से वेद विलुप्ति को प्राप्त हो गये और धर्म का स्थान वेद के स्थान पर पुराणों की शिक्षाओं ने लिया। अविद्या के ऐसे ही समय में एकेश्वरवाद के स्थान पर अवतारवाद व बहुदेवतावाद का सिद्धान्त काम करने लगा। लोग जड़ देवताओं को भी चेतन देवता मानने लगे और आज भीयह अविद्या हिन्दू समाज में व्याप्त है। वायु, जल व अग्नि जड़ देवता हैं परन्तु इनकी भी पूजा की जाने लगी। देवता उसे कहते हैं जो दिव्य गुणों से युक्त हो। अग्नि, वायु व जल में दिव्य भौतिक गुण होते हैं। इसी कारण यह व अनेक पदार्थ देवता कहलाते हैं परन्तु जड़ होने से यह पूजनीय नहीं होते। पूजा का जो तरीका हिन्दू मतों में है वह हास्यापद सा है। यह पृथिवी पर खड़े होकर सूर्य को भी पानी देने लगे। इन सब लक्षणों को देखकर यही कहा जा सकता है पौराणिक मत के प्रभाव से विवेक बुद्धि नष्ट हो गई और इस अविद्या के कारण हिन्दू समाज बिखरने के साथ नष्ट व भ्रष्ट होता रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में देश में ऋषि दयानन्द जी का आविर्भाव होता है। वह सत्य व सच्चे ईश्वर की खोज सहित आत्मा के स्वरूप व उसकी उन्नति व अवनति के साधनों को जानने के लिए अपने माता-पिता के घर से निकले थे। इसके बाद वह अनेक योगियों व ज्ञानियों के सम्पर्क में आते हैं और एक अच्छे योगी व ज्ञानी बन जाते हैं। इस पर भी प्राप्त ज्ञान से उनकी तृप्ति नहीं होती। वह किसी उच्च कोटि के विद्या गुरू की तलाश करते हैं। उन्हें मथुरा के प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी का पता मिलता है। वह उनके पास पहुंच जाते हैं। तीन वर्ष तक उनके सान्निध्य में रहकर अध्ययन करते हैं और वेद एवं वैदिक वांग्मय का ज्ञान प्राप्त करते हैं। उन्हें सत्य व असत्य ग्रन्थों की कसौटी भी अपने गुरु से प्राप्त होती है। जिन ग्रन्थों में सच्चे ऋषियों की आलोचना व निन्दा हो वह अनार्ष ग्रन्थ होते हैं। उन ग्रन्थों का त्याग कर देना चाहिये और जिन ग्रन्थों में प्राचीन सच्चे ऋषियों की प्रशंसा व उनके ज्ञान व विचारों की चर्चा है उनका अध्ययन तर्क व विवेक बुद्धि से करना चाहिये और उनकी परीक्षा करके ही उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करना चाहिये।

अपने गुरु की प्रेरणा से स्वामी दयानन्द जी ने ईश्वर से सृष्टि के आरम्भ में प्राप्त वेद ज्ञान का प्रचार व प्रसार किया। उन्होंने वेद विरुद्ध सभी मतों की आलोचना व समीक्षा कर वेद की शिक्षाओं को सबके लिए ग्रहण करने योग्य और मत-मतान्तरों की शिक्षाओं को हानिकारक, अनुपयोगी एवं मनुष्य की सांसारिक एवं पारलौकिक उन्नति में बाधक बताया। उन्होंने इसके प्रचुर तर्क व प्रमाण भी दिये। इसका परिणाम यह हुआ कि सभी मतों में हलचल हुई। सभी ऋषि दयानन्द जी के विरोधी व शत्रु बन गये। सत्य को ग्रहण करने व असत्य को छोड़ने का साहस अपवाद स्वरूप ही किसी में होता है। स्वामी जी द्वारा वेदों का प्रकाश करने पर भी देशवासी अपने-अपने हित-अहित का ध्यान कर अपने मत में ही बने रहे, सत्य मत को स्वीकार न किया। आज भी यही स्थिति है। ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना कर उसको दस स्वर्णिम दिये जिनमें से चैथा नियम है कि सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदा-सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। आज यदि सभी मतों पर दृष्टि डाली जाये तो सत्य के ग्राहक ढूंढने पर भी कहीं नहीं मिलते हैं। जिनका जहां स्वार्थ सिद्ध होता हो व सौदा सस्ता हो, वहीं सब जाते हुए दीखते हैं। वर्षों की गुलामी व अविद्या के संस्कारों के कारण मनुष्यों की बुद्धि ऐसी जड़ हो गई है कि वह अपनी बुद्धि से सत्य व असत्य का निर्णय नहीं कर पाते। इसे वह अपने अपने अविद्या व स्वार्थ से ग्रस्त धर्म गुरुओं पर छोड़ देते हैं। वह अपने चेलों से अपना स्वार्थ सिद्ध करने के साथ उनका भरपूर आर्थिक व मानसिक दोहन करते हैं। ऐसे कई धर्म गुरू विगत कुछ समय में कानून की पकड़ में भी आये हैं। लोग यह भूल बैठे हैं कि संसार में ईश्वर एक है और उसके गुणों व शिक्षाओं का धारण व पालन ही मनुष्यों का धर्म है और वह सब मनुष्यों के लिए एक है।

आजकल धर्म व मत के नाम से जो संगठन व संस्थायें चल रहे हैं वह एक प्रकार से धर्म न होकर धर्म की दुकानें हैं जहां धर्म का व्यापार होता है और अपने अपने राजनीति, सामाजिक व आर्थिक हित साधे जाते हैं। वस्तुतः धर्म तो सत्य का आचरण करना ही होता है और वह सबके लिए एक ही है। सभी धर्मों व उनकी पुस्तकों पर विचार करते हैं तो वेद के अतिरिक्त सभी एंकागी हैं। इसके अतिरिक्त उनकी अनेक शिक्षायें लिंग समानता पर आधारित न होकर पक्षपातपूर्ण हैं। विज्ञान की कसौटी पर भी प्रायः सभी मत फेल हैं। सभी मतों में विज्ञान की विरोधी बातें पायी जाती हैं। केवल वेद ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसकी सभी शिक्षायें व अधिकार मनुष्यों के गुण, कर्म व स्वभाव सहित उनकी योग्यता व पात्रता पर आधारित हैं। समानता व न्याय के सिद्धान्त का पालन भी वेदों की मान्यताओं एवं सभी सिद्धान्तों में होता है। सम्पूर्ण सत्य ज्ञान के आकर ग्रन्थ होने से वेद ही ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध होता है। वेद के बाद यदि कोई ग्रन्थ मनुष्यों के लिए सबसे उपयोगी है तो वह सत्यार्थप्रकाश है। उसके बाद ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, उपनिषद एवं दर्शन व समस्त वेदानुकूल वैदिक साहित्य को रख सकते हैं। अतः वेद और सत्यार्थप्रकाश को धर्म ग्रन्थ कह सकते हैं जो अपने सत्य सिद्धान्तों के कारण सार्वभौमिक धर्म की पात्रता रखते हैं।

 वेदों और मत-मतान्तरों के ग्रन्थों में एक बड़ा अन्तर यह है कि वेदों में ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति (कारण व कार्य) का यथार्थ वर्णन हुआ जबकि अन्य ग्रन्थों में अनेक प्रकार के भ्रम, संशय व अनिश्चय की स्थिति है। इसी कारण वेद ही प्रासंगिक हैं और अन्य ग्रन्थ असत्य व सत्य के पूर्ण प्रवक्ता न सही अपूर्ण व अनेक स्थानों पर सत्य के विपरीत होने के कारण स्वीकार्य या प्रासंगिक नहीं है। वेदाचरण से मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त होता है, इहलोक व परलोक को भी सुधारता है, वहीं अन्य मतों के ग्रन्थों में इहलोक सुधारने का कोई युक्ति संगत ज्ञान नहीं है और परलोक तो अपने मत के प्रवर्तक की दया व कृपा पर छोड़ दिया या फिर ज्ञान न होने के कारण कह दिया कि उनके मत पर विश्वास ले आने पर उनके पाप मुक्त हो जाते हैं। यह एक प्रकार का अपने की संख्या बढ़ाने वाला सिद्धान्त प्रतीत होता है। बहुत से मत व उनके अनुयायी, जिनमें वैज्ञानिक व शिक्षित लोग भी हैं, वह तो पुनर्जन्म के यथार्थ सिद्धान्त को भी नहीं मानते। उनके मत के लोगों की मृत्यु होने पर उनके मत के लोगों की आत्माओं का क्या होता है? वह स्वर्ग व जन्नत की बातें करते हैं जो कि एक प्रकार से पौराणिक कल्पित स्वर्ग जैसा ही लगता है। इन बातों का न तो कोई शास्त्रीय प्रमाण है और न तर्क या बुद्धिसंगत सिद्धान्त ही। तर्क व बुद्धि को तो जैसे सभी मत-मतान्तरों ने तिलांजलि दे रखी है। तर्क व युक्ति पर यदि किसी धर्म या मत की मान्यतायें व सिद्धान्त सत्य सिद्ध होते हैं तो वह केवल वैदिक धर्म व वैदिक मत ही है। एक दृष्टि सभी मतों की पूजा पद्धतियों पर भी डालनी उचित है। वेैदिक धर्म आत्मा से परमात्मा के गुणों का विचार, चिन्तन, जप व कृतज्ञता व्यक्त करने को उसकी पूजा पद्धति मानता है जिसमें वेदों व वेदानुकूल ऋषिकृत ग्रन्थों का स्वाध्याय व उनका आचरण भी है। अन्य मतें में कुछ लिखी हुई प्रार्थनाओं को याद कर उसे दोहरा देते हैं और कुछ शारीरिक आसन आदि करते हैं। ऐसा करके न तो किसी को ईश्वर प्राप्त हुआ है और वेदों का अध्ययन करने के बाद उसकी सम्भावना ही लगती है।

योग दर्शन में अष्टांग योग का उल्लेख है और समाधि अवस्था को प्राप्त करने के शास्त्र व युक्तिसंगत उपाय बताये गये हैं। समाधि वह अवस्था होती है जिसमें मनुष्य की आत्मा को ईश्वर का साक्षात्कार होता है। स्वामी दयानन्द व पूर्व के सभी ऋषियों ने समाधि अवस्था को प्राप्त कर स्वयं को ईश्वर के गुण कर्म व स्वभाव के अनुसार बनाया था व मानवता के उपकार के लिये कार्य किये थे। वेदेतर मतों में जीवन व आचरण की स्वच्छता, शुद्धि व पवित्रता पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। उनसे केवल अपने मत की सत्यासत्य मान्यताओं का सही व गलत अनुकरण कराया जाता है। आज के आधुनिक युग में कोई उन पर विचार तक नहीं करता कि वह सत्य भी है या नहीं। लकीर पीटी जा रही है और अंधानुकरण किया जा रहा है। मनुष्य का स्वभाव है कि उसे जैसी संगति मिलती है वह वैसा ही बन जाता है। सत्य को जानने व उसका पालन करने के प्रति तीव्र भावना, दृण इच्छा विरले मनुष्यों में ही होती है और वही वास्तव में धर्मज्ञ व धर्मपुरूष होते हैं।

लेख को विराम देने से पूर्व यह भी कहना है कि किसी भी ऐसे प्राणी की हत्या जो हमारा हितकारी है, अपकारी नहीं है, एक महापाप होता है। उसका मांस खाना उससे भी बड़ा पाप है। पशु की हत्या करने वाले, उसके क्रय विक्रय करने वाले, मांस को पकाने वाले, परोसने व खाने वाले सभी पापी होते हैं। मनुस्मृति में यह बात डंके की चोट पर कही गई है। विदेशियों के सम्पर्क में आकर भारत के आर्य व हिन्दू जाति के कुछ लोग मांसाहार करने लगे। यह उनकी बहुत बड़ी अविद्या है। मानवता में विश्वास रखने वाले मनुष्यों को मांसाहार तुरन्त बन्द कर देना चाहिये अन्यथा जन्म जन्मान्तर में इस पाप कर्म रूपी ऋण को चुकाना पड़ेगा। हो सकता है कि अनेक बार पशु बन कर उन पशुओं के समान पीड़ित होना पड़े जिनका हमने मांस खाया है। धर्म का अर्थ सभी अच्छे व श्रेष्ठ गुणों को धारण करना है। श्रेष्ठ गुणों का धारण व उनका आचरण ही श्रेष्ठ धर्म है। यह वेद ही सिखाते व बताते हैं। अतः वेद ही प्रासंगिक एवं उपयोगी है। अन्य मतों में असत्य मान्यताओं व सिद्धान्तों के होने के कारण भले ही वह प्रचलित रहें, इसके अनेक कारण हैं परन्तु वह प्रासंगिक नहीं है। आने वाले समय में उनका प्रभाव धीरे धीरे समाप्त हो सकता है। ईश्वर जब चाहेंगे तभी ऐसा होना सम्भव है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और अपने कर्मों के फल भोगने में परतन्त्र है। जो जैसा करेगा वैसा ही भोगेगा। यह वैसा ही है जैसे मनुष्य जो बोता है वही काटता है। संसार के सभी लोग वेदों का अध्ययन करें व ईश्वर प्रदत्त वैदिक धर्म का पालन कर अपने इहलोक व परलोक को सफल बनायें। वेदों का मार्ग मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार कराता है और अन्य मार्ग उसे मनुष्य जन्म के पापों का दुःख रूपी भोग कराते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**